सीताराम साव @ मुंगेरी

बनाम

झारखंड राज्य

12 नवंबर, 2007

[बेंच: डॉ. अरिजीत पसायत, लोकेश्वर सिंह पंटा, जे.जे.]

दंड संहिता, 1860- धारा 364, 396 और 120बी- अपहरण, डकैती और हत्या- कुछ अभियुक्त के कब्जे से लूटे गए पैसे की रिकवरी- एक अभियुक्त सरकारी गवाह घोषित किया गया- विचारण न्यायालय ने सरकारी गवाह के बयान के आधार पर अभियुक्त को दोषी ठहराया- अपील में उच्च न्यायालय ने मामले को नए सिरे से कमिटल के लिए रिमाण्ड कर दिया क्योकि मुकदमा सरकारी गवाह के बयान पर आधारित था जो धारा 306 सीआरपीसी मे वर्णित निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार दर्ज नहीं किया गया था- अनुमोदक के बयान लेखबद्ध करने के पश्चात नये सिरे से प्रकरण को कमिटल किया गया- नए सिरे से विचारण के पश्चात, अनुमोदक के बयानों के आधार पर दोष सिद्धी की गई उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि- अपील में,

अभिनिर्धारित किया गया- दोष सिद्धी न्यायोचित है- अनुमोदक की साक्ष्य पूर्ण रूप से पुष्ट है और इसलिए विश्वसनीय है- प्रकरण के रिमाण्ड के बाद उसका बयान दर्ज करने के लिए अपनाई गई प्रक्रिया मे कोई अवैधता नही है- दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973-धारा 306

साक्ष्य अधिनियम, 1872- धारा 133 और 114 दृष्टांत (बी)- अनुमोदक के बयाने की विश्वसनीयता व पुष्टि की अवश्यकता- अभिनिर्धारित किया कि- अनुमोदक के बयानों की पुष्टि की आवश्यकता विवेक का विषय है, सिवाय इसके जब इस तरह की पुष्टि करना सुरक्षित हो- दण्ड प्रक्रिया संहिता,1973- धारा 306

अपीलार्थी- अभियुक्त पर अन्य लोगों के साथ डकैती एवं एक महिला की हत्या के अपराध का आरोप लगाया गया था अभियोजन कहानी के मुताबिक मामला यह था कि मृतक अपनी कार में कुछ पैसे के साथ आ रही थी जिसे उसका ड्राइवर (अभियुक्त) चला रहा था जब वह घर नही लौटी तो उसके पति (पी.डब्ल्यू. 1) ने ड्राइवर के खिलाफ रिपोर्ट दर्ज करवाई। पुलिस को मृतक का मृत्त-शरीर मिला व कार कहीं और लावारिस हालत में मिली। ड्राइवर-अभियुक्त की गिरफ्तारी के बाद लूटे गए पैसे का हिस्सा उसके घर से बरामद हुआ। उसने अपने सहयोगियों के नाम भी बताये। जिसके पश्चात अन्य अभियुक्तों को भी गिरफ्तार कर लिया गया। अन्य अभियुक्तों के घर से भी लूटे गये पैसे का कुछ हिस्सा बरामद हुआ।

इसी दौरान अन्य अभियुक्त ने अपना अपराध कबूल कर लिया और घटना के सम्बन्ध में बयान देने की इच्छा जाहिर की। उसके बयान धारा 306 सीआरपीसी के तहत लेखबद्ध किए गए व उसे अनुमोदक घोषित किया गया। विचारण के पश्चात् अपीलार्थी के साथ-साथ अन्य अभियुक्तों को दोषसिद्ध किया गया। अपील में, उच्च न्यायालय ने देखा कि अनुमोदक का धारा 306 सीआरपीसी का परीक्षण अन्य अभियुक्तों की उपस्थिति में नहीं था और उसकी जिरह भी नही हुइ थी इसलिए विचारण न्यायालय के निर्णय को अपास्त किया जाकर प्रकरण को नए सिरे से कमिटल के लिए रिमाण्ड किया गया। मजिस्ट्रेट को निर्देश दिए गए कि अनुमोदक (पी.डब्ल्यू. 06) के बयान निर्धारित प्रक्रिया में लेखबद्ध कर प्रकरण को विचारण के लिए कमिट किया जावे। विचारण न्यायालय ने अभियुक्त को धारा 364,396 और 120बी भा.द.सं. के तहत दोषसिद्ध किया। उच्च न्यायालय ने दोषसिद्धी की पुष्टि की। इसलिए वर्तमान अपील की।

अपील को ख़ारिज करते हुए न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि:

1.1. साक्ष्य अधिनियम की धारा 133 स्पष्ट रूप से प्रावधान करती है कि एक सहअपराधी एक सक्षम गवाह है और दोषसिद्धि केवल इसलिए अवैध नहीं है क्योंकि यह एक सहअपराधी की अपुष्ट गवाही पर आगे बढ़ती है। दूसरे शब्दों में, यह धारा ऐसी अपुष्ट गवाही को स्वीकार्य बनाती है। लेकिन इस धारा को धारा 114, दृष्टांत (बी) के साथ पढ़ा जाना चाहिए। बाद

वाला खंड न्यायालय को कुछ तथ्यों के अस्तित्व की उपधारणा करने का अधिकार देता है और दृष्टांत स्पष्ट करता है कि न्यायालय क्या उपधारणा कर सकता है और उदाहरणों के माध्यम से स्पष्ट कर सकता है कि न्यायालय को इस बात पर विचार करने में किन तथ्यों पर विचार करना चाहिए कि सचित्र सिद्धांत किसी दिए गए मामले पर लागू होते हैं या नहीं। दृष्टांत (बी) स्पष्ट शब्दों में कहता है कि सहअपराधी तब तक श्रेय के योग्य नहीं है जब तक कि सारभूत तथ्यों से उसकी पुष्टि न हो जाए। क़ानून किसी आरोपी को किसी सहअपराधी की असंपुष्ट गवाही के आधार पर दोषी ठहराने की अनुमति देता है, लेकिन साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 के दृष्टांत(बी) में सन्निहित विवेक का नियम अदालत को चेतावनी देते हुए चेतावनी देता है कि एक साथी आम तौर पर इसके लायक नहीं है, जब तक सारभूत तथ्यों से इसकी पुष्टि न हो जाए तब तक विश्वास किया जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में, नियम यह है कि संपुष्टि की आवश्यकता विवेक का विषय है, सिवाय इसके कि जब ऐसा करना सुरक्षित हो तो ऐसी संपुष्टि न्यायाधीश के दिमाग में स्पष्ट रूप से मौजूद होनी चाहिए।

सुरेश चंद्र बाहरी बनाम बिहार राज्य, एआईआर (1994) एससी 2420 पर निर्भर किया।

भूबों साहू बनाम किंग एआईआर (1949) पीसी 257 पर निर्भर किया।

1.2. हालाँकि धारा 114 दृष्टांत (बी) में प्रावधान है कि न्यायालय यह उपधारणा कर सकता है कि किसी सहअपराधी की साक्ष्य विश्वसनीय नहीं है जब तक कि इसकी पुष्टि नहीं हो जाती, "हो सकता है" आवश्यक नहीं है और न्यायालय का कोई भी निर्णय इसे आवश्यक नहीं बना सकता है। न्यायालय यह मानने के लिए बाध्य नहीं है कि वह श्रेय के योग्य नहीं है। यह अंततः न्यायालय के दृष्टिकोण पर निर्भर करता है कि किसी सहअपराधी द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य की विश्वसनीयता क्या है।

जीएस बख्शी बनाम राज्य (दिल्ली प्रशासन), एआईआर (1979) एससी 569; और रामेश्वर बनाम राजस्थान राज्य, एआईआर (1952) एससी 54, पर निर्भर किया।

रेक्स बनाम बास्करविले, (1916) 2 केबी 658;

टेलर के दवारा "ए ट्रीटीज़ ऑन द लॉ ऑफ़ एविडेंस" 1931 खंड 1 पैरा 967 रेफर किया।

ज्ञानेंद्र नाथ घोष बनाम पश्चिम बंगाल राज्य [1960] 1 एससीआर 126; भिवा दोलू पाटिल बनाम महाराष्ट्र राज्य, एआईआर (1963) एससी 599; डीपीपी बनाम हेस्टर (1972) 3 ऑल ईआर 1056 और डीपीपी बनाम कैलबोर्ने (1973); ऑल ईआर 440 रेफर किया

1.3. यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक भौतिक परिस्थिति की स्वतंत्र पुष्टि इस अर्थ में हो कि मामले में शिकायतकर्ता या सहअपराधी की गवाही के अलावा स्वतंत्र साक्ष्य, अपने आप में दोषसिद्धि को बनाए रखने के लिए पर्याप्त होना चाहिए। वास्तव में, यदि यह आवश्यक होता कि अपराध के हर विवरण में सहयोगी की पुष्टि की जानी चाहिए, तो उसका साक्ष्य मामले के लिए आवश्यक नहीं होगा, यह केवल अन्य और स्वतंत्र गवाही की पुष्टि होगी। बस इतना ही आवश्यक है कि कुछ अतिरिक्त सबूत होने चाहिए जो यह संभव बनाते हों कि सहअपराधी (या शिकायतकर्ता) की कहानी सच है और उस पर कार्रवाई करना उचित रूप से सुरक्षित है। स्वतंत्र साक्ष्य को न केवल यह विश्वास दिलाना सुरक्षित होना चाहिए कि अपराध किया गया था, बल्कि किसी तरह से आरोपी को इसके साथ जोड़ना या जोड़ना चाहिए, कुछ सामग्री विशेष रूप से साथी या शिकायतकर्ता की गवाही की पुष्टि करके कि आरोपी ने अपराध किया। इसका मतलब यह नहीं है कि पहचान की पुष्टि अपराध के साथ आरोपी की पहचान करने के लिए आवश्यक सभी परिस्थितियों तक होनी चाहिए। फिर, यह आवश्यक है कि स्वतंत्र साक्ष्य हों जो गवाह की कहानी पर विश्वास करना उचित रूप से सुरक्षित कर सकें कि अभियुक्त एक ही था, या उनमें से, जिन्होंने अपराध किया था। पुष्टि के लिए प्रत्यक्ष साक्ष्य की आवश्यकता नहीं है कि अभियुक्त ने अपराध किया है। यदि यह अपराध के साथ उसके संबंध का परिस्थितिजन्य साक्ष्य मात्र

है तो यह पर्याप्त है।।[पैरा 26, 27, 28, 29, 30][1010-सी,ई,एफ,जी; 1011-बी, सी]

के. हाशिम बनाम तमिलनाडु राज्य [2005] 1 एससीसी 237 पर निर्भर किया।

एमओ शम्सुद्दीन बनाम केरल राज्य [1995] 3 एससीसी 351,रेफर किया

2. हस्तगत प्रकरण में अनुमोदक ने अपनी साक्ष्य में उन घटनाओं का क्रम दिया है जिसके कारण मृतक की हत्या हुई और उन्होंने यह भी बताया कि कैसे एक साजिश रची गई और कैसे अन्य आरोपी व्यक्तियों की मदद से साजिश को अंजाम दिया गया और कैसे आरोपी 'एल' की शह और सक्रिय भागीदारी पर ड्राइवर अभियुक्त ने मृतक को चाकू मारा था। आरोपी-अपीलकर्ता की ओर से कहा गया है कि इस गवाह ने उस लड़के का नाम नहीं बताया, जो उसे बुलाने आया था और न ही उसने ऑटो रिक्शा का नंबर और वह जगह बताई, जहां उसके अन्य साथी खड़े थे। हालाँकि ये सभी बिंदु सारभूत नहीं हैं, लेकिन पीडब्लू-6 के साक्ष्य तब पुष्ट होते हैं जब डॉक्टर को मृतक के शरीर पर चोट के निशान मिले और इसके अलावा गाल और गर्दन पर भी खरोंच के निशान पाए गए जब आरोपी-अपीलकर्ता ने मृतक का मुंह दबाया था जिससे वह शोर नहीं मचा सक और आगे यह भी बता सकती है कि पैसे लूट लिए गए थे और लूटे गए पैसे का कुछ

हिस्सा उसकी संस्वीकृति बयान के आधार पर ड्राइवर अभियुक्त के कब्जे से बरामद किया गया था। हालाँकि यह तथ्य पीडब्लू-6 की गिरफ्तारी से पहले का है, लेकिन पीडब्लू-6 के साक्ष्य से ये सभी तथ्य पीडब्लू-6 के साक्ष्य की पुष्टि करते हैं क्योंकि वह इन सभी तथ्यों को नहीं जानता था और उसके साक्ष्य से ये सभी तथ्य पुष्ट हो जाते हैं और, इसलिए, PW-6 के साक्ष्यों की पूर्ण पुष्टि है और PW-6 के साक्ष्य पर अविश्वास करने का कोई आधार नहीं है और इसलिए PW-6 के साक्ष्य के आधार पर आरोपी-अपीलकर्ता और सह-अभियुक्त 'एल' को दोषी पाया गया। और वे आईपीसी की धारा 396 के तहत अपहरण के साथ-साथ घटना में भी शामिल थे।

[पैरा 32][1011-ई,एफ,जी; 1012-ए,बी]

3. मामले के रिमांड के बाद सीजेएम द्वारा अपनायी गयी प्रक्रिया और आदेश में कोई अवैधता नहीं है। सीआरपीसी की धारा 306 का पूर्ण अनुपालन किया गया था अनुमोदक की जांच करने का चरण केवल उसे क्षमा प्रदान किए जाने के बाद आता है और क्षमा के बाद आरोपी की उपस्थिति में एक गवाह के रूप में उसकी जांच की गई और उससे जिरह भी की गई।[पैरा 34][1012-डी,ई]

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार: आपराधिक अपील संख्या 1528/2007

झारखंड उच्च न्यायालय, रांची के आपराधिक अपील संख्या: 575/2002 एवं आपराधिक अपील संख्या 1531/2007 में निर्णय एवं आदेश दिनांकित 29.06.2005 से।

पी. एस. मिश्रा, तथागत एच. वर्धन, ध्रुव कुमार झा, रवि सी. प्रकाश और मनु शंकर मिश्रा अपीलार्थी की ओर से।

संतोष सिंह, (ए. सी.) आपराधिक अपील संख्या 1531/2007 में अपीलार्थी की ओर से।

अनिल के. झा प्रतिवादी के लिए

न्यायालय का निर्णय डॉ.न्यायधीस अरिजीत पसायत दवारा दिया गया।

1. अनुमति दी गयी।

2. इन अपीलों में चुनौती झारखंड उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ के फैसले को दी गई है, जिसमें अपीलकर्ताओं द्वारा दायर अपीलों को खारिज कर दिया गया था और भारतीय दंड संहिता, 1860 (संक्षेप में आईपीसी) की 364 और 396 सहपठित धारा 120 बी के तहत दंडनीय अपराधों के लिए दोषसिद्धि को बरकरार रखा गया था। वास्तव में, उच्च न्यायालय ने सेशन विचारणीय प्रकरण संख्या 156/1997 में पारित दोषसिद्धि के फैसले दिनांक 16 जुलाई, 2002 और 23 जुलाई, 2002 के

खिलाफ दो अपीलों का निपटारा किया। जैसा कि ऊपर बताया गया है, ट्रायल कोर्ट ने दोनों आरोपी अपीलकर्ताओं को दोषी पाया और आईपीसी की धारा 364 और 396 के तहत दंडनीय अपराधों के लिए आजीवन कारावास की सजा सुनाई। हालाँकि, धारा 120 बी के तहत कोई अलग सजा नहीं दी गई, जबकि सह-अभियुक्त लक्ष्मी प्रसाद को आईपीसी की धारा 412 के तहत दंडनीय अपराध के लिए भुगती हुई सजा ही सुनाई गई थी।

3. उच्च न्यायालय ने अपीलों में कोई सार नहीं पाया और उपर बताये अनुसार उसे खारिज कर दिया।

4. पृष्ठभूमि के तथ्य संक्षेप में इस प्रकार हैं: दिनांक 8.1.1992 को सूचनाकर्ता की पत्नी गायत्री देवी अपनी एम्बेस्डर कार जिसका पंजीकरण संख्या एएवाई 7375 है, से पंडरा कृषि बाजार गई थीं और वहां से दुकान संख्या 244 से 251 की दिन की बिक्री की रकम एकत्र करके वह लगभग रात्रि के 8 बजे अपने आवास के लिए निकल गई। कार का चालक, लक्ष्मी पासवान, जो आरोपियों में से एक था, कार चला रहा था। गायत्री देवी 1,84,405/- रुपये वसूलने के बाद अपने घर नहीं लौटी, तो सूचनाकर्ता ने सुखदेव नगर थाने को उनकी पत्नी और कार के चालक लक्ष्मी पासवान के लापता होने की सूचना दी। सूचनाकर्ता ने लक्ष्मी पासवान को पिछले ड्राइवर, अर्थात् राजेंद्र चौधरी की सिफारिश पर अपनी कार के चालक के रूप में नियुक्त किया था। जब सूचक की पत्नी और चालक रात तक वापस

नहीं आये, तो सूचक ने अगली सुबह यानी 9.1.1992 को एक लिखित रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसमें आरोप लगाया गया कि कार के चालक लक्ष्मी पासवान ने असामाजिक तत्वों के साथ मिलीभगत कर तत्वों ने उसकी पत्नी की हत्या करने और पैसे छीनने के लिए उसकी पत्नी और कार का अपहरण कर लिया। यह आरोप लगाया कि विश्वस्त सूत्रों से सूचनाकर्ता से पता चला कि उसकी कार रात में रेंच रामगढ़ रोड पर देखी गयी है।

उक्त सूचना के आधार पर सुखदेव नगर थाना ने केवल लक्ष्मी पासवान के खिलाफ आईपीसी की धारा 364 के तहत मामला दर्ज किया और अनुसंधान के दौरान सूचनाकर्ता की पत्नी गायत्री देवी का शव रामगढ़ पुलिस थाना के अंतर्गत गिद्दी राष्ट्रीय सड़क पर पाया गया। जांच रिपोर्ट तैयार करने के बाद, गवाहों की उपस्थिति में, प्रकरण के अनुसंधान अधिकारी ने शव को पोस्टमार्टम के लिए आरएमसीएच भेज दिया. इसके बाद, सूचनाकर्ता की कार जिसका पंजीकरण नंबर एएवाई 7375 है, कुज्जू कस्वा चौकी के पास लावारिस हालत में पड़ी मिली। इसके बाद सुखदेव नगर थाना के प्रभारी अधिकारी ने कुज्जू टीओपी से उक्त कार को अपने कब्जे में ले लिया और गवाहों की उपस्थिति में उसकी तलाशी ली गयी और तलाशी के दौनान कुछ सामान जब्त किये गये. जब्ती सूची तैयार की गई और जांच के दौरान, आरोपी लक्ष्मी पासवान को दिनांक 14.1.1992 को औरंगाबाद जिले के उसके गांव मुंगरही से गिरफ्तार किया गया और गायत्री

देवी से चुराए गए पैसे का एक हिस्सा 30,695/- रुपये भी उसके संस्वीकृति बयान के आधार पर उसके घर से बरामद किए गए। लक्ष्मी पासवान ने पुलिस को अपने सहयोगियों के नाम का खुलासा किया और बाद में अन्य आरोपियों को भी गिरफ्तार कर लिया गया। अनुसंधान के दौरान में स्वीकारोक्ति बयान के आधार पर गिरजा सिंह के घर से 27,220/- रुपये भी बरामद किये गये। बाद में, एक आरोपी ललित सांगा को भी गिरफ्तार कर लिया गया, जिसने पुलिस के सामने अपना अपराध कबूल कर लिया और घटना के संबंध में बयान देने की इच्छा व्यक्त की। उनका बयान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 की (संक्षेप में 'सी.आर. पीसी') की धारा 306 के तहत दर्ज किया गया था और उन्हें माफ़ कर दिया गया था। प्रकरण सत्र न्यायालय को कमिट कर दिया गया था, जिसे एसटी संख्या 319/92 के रूप में पंजीकृत किया गया था और उसके बाद आरोपी व्यक्तियों को विद्वान छठे अतिरिक्त न्यायिक आयुक्त, रांची और विद्वान अतिरिक्त न्यायिक आयुक्त की अदालत में विचारण किया गया और साक्ष्य पर विचार करते हुए, उन्हें दोषी पाया; लेकिन अपने फैसले दिनांक 1.10.1992 द्वारा दो आरोपी व्यक्तियों, गिरजा सिंह और दिनेश कुमार सिंह को बरी कर दिया। आरोपियों में से एक, लक्ष्मी पासवान को मौत की सजा सुनाई गई, जबकि अन्य आरोपियों को आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई। इसके बाद, राज्य और आरोपी व्यक्तियों दोनों ने आक्षेपित फैसले के खिलाफ अपील की और उच्च

न्यायालय ने 28 जुलाई, 1993 के अपने फैसले द्वारा, छठे अतिरिक्त न्यायिक आयुक्त, रांची द्वारा पारित दोषसिद्धि के फैसले को रद्द कर दिया और मामले को वापस विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, रांची की अदालत को नई प्रतिबद्धता कार्यवाही के लिए रिमाण्ड कर दिया और विद्वान सीजेएम को कानून और प्रक्रिया के अनुसार अभियोजन गवाह के रूप में ललित सांगा, अनुमोदनकर्ता, (पीडब्लू 6) की जांच करने का निर्देश दिया था। मामले की रिमांड के बाद विद्वान सीजेएम ने अनुमोदनकर्ता गवाह ललित सांगा को धारा 306 सीआरपीसी के तहत पूछताछ की और उसके बाद आदेश दिनांक 19.2.1997 द्वारा मामले को सत्र न्यायालय को सौंप दिया गया और मामले की रिमांड के बाद, मामला सत्र विचारण संख्या 156/97 के रूप में दर्ज किया गया था। विद्वान न्यायिक आयुक्त, रांची ने आरोपी व्यक्तियों के विचारण के लिए मामले को दूसरे न्यायालय में स्थानांतरित कर दिया। रिकॉर्ड प्राप्त होने पर, आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ आईपीसी की धारा 396, 412 और 120 (बी) के तहत दंडनीय अपराध के लिए आरोप विरचित किए गए।

5. विचारण आगे बढ़ा और विचारण के दौरान विचारण अदालत ने दस्तावेजी साक्ष्य और सारभूत प्रदर्शो के अलावा तेईस गवाहों के बयान दर्ज किए और अंततः इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि अपीलकर्ता दोषी हैं और तदनुसार उन्हें दोषी ठहराया गया। बयान दर्ज होने के बाद आरोपी गिरजा

सिंह भाग गया, और इसलिए उसका मुकदमा अन्य आरोपियों के मुकदमे से अलग कर दिया गया.

6. विचारण न्यायालय ने 23 गवाहों के बयान दर्ज किए और उनकी साक्ष्य की जांच की और आरोपी-अपीलकर्ताओं को दोषी पाया। इस मामले में, सभी आवश्यक गवाहों जैसे आई.आे., डॉक्टर और सूचनाकर्ता की जांच की गई। अपील में उच्च न्यायालय ने कहा कि अभियोजन पक्ष ने इस मामले से जुड़े गवाहों से पूछताछ करने में अपनी ओर से कोई कमी नहीं छोड़ी है।

7. अपीलकर्ताओं का मूल तर्क, जैसा कि उच्च न्यायालय के समक्ष तर्क दिया गया था, यह था कि घटना में कोई चश्मदीद गवाह नहीं था और केवल अनुमोदनकर्ता ललित सांगा की साक्ष्य के आधार पर, आरोपी व्यक्तियों को दोषी पाया गया है। दलील दी गई है कि जिस तरह से ललित सांगा को माफी दी गई, वह गैरकानूनी है। आपराधिक अपील संख्या 202/1992 में उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय का संदर्भ दिया गया था। यह इंगित किया गया है कि पहले सत्र मामले में दर्ज साक्ष्य जहां सत्र परीक्षण संख्या 319/1992 को रद्द कर दिया गया था और जब प्रश्नगत निर्णय को रद्द कर दिया गया था, तो प्रक्रिया नए सिरे से शुरू की जानी चाहिए थी। फैसले के अनुसार, मामले को सीजेएम की अदालत में भेज दिया गया, जहां गवाह के रूप में ललित सांगा से पूछताछ करने का निर्देश

दिया गया। आरोपी अपीलकर्ताओं की शिकायत है कि पहले फैसले में उच्च न्यायालय के निर्देश के बाद सीआरपीसी की धारा 306 के तहत निर्धारित प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया। आरोपी व्यक्तियों की उपस्थिति में ललित सांगा से पूछताछ की गई और उनसे जिरह की गई और उसके बाद मामला सत्र न्यायालय को सौंप दिया गया, लेकिन ललित सांगा को माफी नहीं दी गई और उच्च न्यायालय के आदेश से उससे दोबारा पूछताछ की गई। इसलिए, यह तर्क दिया गया है कि सीआरपीसी की धारा 306 की आवश्यकताओं का अनुपालन नहीं किया गया था। यह तर्क दिया गया था कि उसे क्षमादान दिया जाना चाहिए था और उसके बाद धारा 306 सीआरपीसी के प्रावधानों के अनुसार उससे गवाह के रूप में पूछताछ की जानी चाहिए थी। आरोपी की मौजूदगी में उससे जिरह की जानी चाहिए थी। लेकिन केवल एक भाग का अनुपालन किया गया है और उसके बाद मामला सत्र न्यायालय को सौंपा गया था, लेकिन एक भाग का अनुपालन नहीं किया गया है कि उसे क्षमादान दिया जाना था। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि इस गवाह की कथित स्वीकारोक्ति भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (संक्षेप में ' साक्ष्य अधिनियम ') की धारा 133 की आवश्यकताओं को पूरा नहीं करती है। आरोपी ललित सांगा ने घटना में अपनी सक्रिय भागीदारी की बात कबूल नहीं की थी। उसकी साक्ष्य भी पूर्णतया सत्य नहीं है।

8. दूसरी ओर, राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने आक्षेपित निर्णय का समर्थन किया।

9. हाई कोर्ट ने कहा कि सीजेएम के आदेश को रद्द नहीं किया गया है. जो बात आंशिक रूप से खारिज कर दी गई वह यह थी कि ललित सांगा से पूछताछ की गई थी लेकिन उससे जिरह नहीं की गई थी और उसका बयान आरोपियों की उपस्थिति में दर्ज नहीं किया गया था। आदेश के उस हिस्से का अनुपालन किया गया है और आरोपी की उपस्थिति में ललित सांगा से पूछताछ की गई और उनसे जिरह भी की गई और उसके बाद मामला सत्र न्यायालय को सौंप दिया गया।

10. हम अपील के इस भाग पर बाद में विचार करेंगे। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि प्रतिवादी-राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि सीआरपीसी की धारा 306 के तहत अनिवार्य प्रक्रिया का पूरी तरह से पालन किया गया है।

11. राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि न केवल सीआरपीसी की धारा 306 की आवश्यकताओं का अनुपालन किया गया है, बल्कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 (बी) संपठित धारा 133 का भी अनुपालन किया गया है।

12. साक्ष्य अधिनियम की धारा 133 और 114 (बी) इस प्रकार है:-

"133. सहअपराधी- एक सहयोगी एक आरोपी व्यक्ति के खिलाफ एक सक्षम गवाह होगा; और एक दोषसिद्धि केवल इसलिए अवैध नहीं है क्योंकि यह एक सहअपराधी की अपुष्ट गवाही पर आधारित है।

114(बी)- न्यायालय यह मान सकता है कि कोई सहअपराधी श्रेय के योग्य नहीं है, जब तक कि पूर्ण रूप से उसकी पुष्टि न हो जाए।"

13. साक्ष्य अधिनियम की धारा 133 का महत्व है। यह एक सहयोगी के साक्ष्य से संबंधित है। सकारात्मक शब्दों में यह प्रदान करता है कि किसी साथी के साक्ष्य के आधार पर दोषसिद्धि केवल इसलिए अवैध नहीं है क्योंकि यह किसी सहअपराधी की अपुष्ट गवाही पर आगे बढ़ती है, क्योंकि सहअपराधी एक सक्षम गवाह है।

14. भुबोन साहू बनाम द किंग एआईआर (1949) पीसी 257 में, यह देखा गया कि किसी साथी के साक्ष्य पर कार्रवाई करने के लिए पुष्टि की आवश्यकता वाला नियम विवेक का नियम है। लेकिन विवेक का नियम तब बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है जब उसकी विश्वसनीयता को विश्वसनीयता की कसौटी पर परखा जाता है। यदि यह विश्वसनीय और ठोस पाया जाता है, तो अदालत किसी सहअपराधी की असंपुष्ट गवाही पर भी दोषसिद्धि दर्ज कर सकती है। किसी साथी की गवाही की विश्वसनीयता के विषय पर, यह

प्रस्ताव कि एक सहअपराधी की पुष्टि की जानी चाहिए, इसका मतलब यह नहीं है कि उन्हीं तथ्यों की संचयी या स्वतंत्र गवाही होनी चाहिए जिनकी उसने गवाही दी है। साथ ही, साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 के तहत उपलब्ध अनुमान महत्वपूर्ण है। इसमें कहा गया है कि न्यायालय यह मान सकता है कि कोई साथी श्रेय के योग्य नहीं है जब तक कि उसकी पुष्टि "सारभूत विवरण" में नहीं की जाती है।

15. साक्ष्य अधिनियम की धारा 133 स्पष्ट रूप से प्रावधान करती है कि एक सहअपराधी एक सक्षम गवाह है और दोषसिद्धि केवल इसलिए अवैध नहीं है क्योंकि यह एक सहअपराधी की अपुष्ट गवाही पर आगे बढ़ती है। दूसरे शब्दों में, यह धारा ऐसी अपुष्ट गवाही को स्वीकार्य बनाती है। लेकिन इस धारा को धारा 114, दृष्टांत (बी) के साथ पढ़ा जाना चाहिए। बाद वाला खंड न्यायालय को कुछ तथ्यों के अस्तित्व की उपधारणा करने का अधिकार देता है और दृष्टांत स्पष्ट करता है कि न्यायालय क्या उपधारणा कर सकता है और उदाहरणों के माध्यम से स्पष्ट कर सकता है कि न्यायालय को इस बात पर विचार करने में किन तथ्यों पर विचार करना चाहिए कि सचित्र सिद्धांत किसी दिए गए मामले पर लागू होते हैं या नहीं। दृष्टांत(बी) स्पष्ट शब्दों में कहता है कि सहअपराधी तब तक श्रेय के योग्य नहीं है जब तक कि सारभूत तथ्यों से उसकी पुष्टि न हो जाए। क़ानून किसी आरोपी को किसी सहअपराधी की असंपुष्ट गवाही के आधार पर दोषी

ठहराने की अनुमति देता है, लेकिन साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 के दृष्टांत(बी) में सन्निहित विवेक का नियम अदालत को चेतावनी देते हुए चेतावनी देता है कि एक साथी आम तौर पर इसके लायक नहीं है, जब तक सारभूत तथ्यों से इसकी पुष्टि न हो जाए तब तक विश्वास किया जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में, नियम यह है कि संपुष्टि की आवश्यकता विवेक का विषय है, सिवाय इसके कि जब ऐसा करना सुरक्षित हो तो ऐसी संपुष्टि न्यायाधीश के दिमाग में स्पष्ट रूप से मौजूद होनी चाहिए। [देखें सुरेश चंद्र बाहरी बनाम बिहार राज्य (एआईआर 1994 एससी 2420)]।

16. हालाँकि धारा 114 दृष्टांत (बी) में प्रावधान है कि न्यायालय यह उपधारणा कर सकता है कि किसी सहअपराधी की साक्ष्य विश्वसनीय नहीं है जब तक कि इसकी पुष्टि नहीं हो जाती, "हो सकता है" आवश्यक नहीं है और न्यायालय का कोई भी निर्णय इसे आवश्यक नहीं बना सकता है। न्यायालय यह मानने के लिए बाध्य नहीं है कि वह श्रेय के योग्य नहीं है यह अंततः न्यायालय के दृष्टिकोण पर निर्भर करता है कि किसी सहअपराधी द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य की विश्वसनीयता क्या है।

17. रेक्स बनाम बास्करविले 1916 2 केबी 658 में, यह देखा गया कि पुष्टि के लिए प्रत्यक्ष प्रमाण की आवश्यकता नहीं है कि अभियुक्त ने अपराध किया है; यदि किसी अपराध से उसके संबंध का परिस्थितिजन्य साक्ष्य मौजूद हो तो यह पर्याप्त है।

18. जीएस बख्शी बनाम राज्य (दिल्ली प्रशासन) एआईआर (1979) एससी 569 एक विपरीत मामला था कि यदि किसी सहअपराधी का साक्ष्य स्वाभाविक रूप से असंभव है तो उसे सम्पुष्टि से ताकत नहीं मिल सकती है।

19. टेलर ने अपने ग्रंथ में कहा है कि "जो सहअपराधी आमतौर पर रुचि रखते हैं और हमेशा कुख्यात गवाह होते हैं, और जिनकी गवाही आवश्यकता से स्वीकार की जाती है, ऐसे सबूतों का सहारा लिए बिना, मुख्य अपराधियों को न्याय के कटघरे में लाना अक्सर असंभव होता है"। (टेलर "ए ट्रीटीज़ ऑन द लॉ ऑफ़ एविडेंस" (1931) खंड 1 पैरा 967 में)।

20. हालाँकि, अनुमोदक का साक्ष्य एक विश्वसनीय गवाह के रूप में दिखाया जाना चाहिए।

21. ज्ञानेंद्र नाथ घोष बनाम पश्चिम बंगाल राज्य [(1960) 1 एससीआर 126] में इस न्यायालय ने कहा कि अनुमोदक के बयान की भौतिक विवरण में पुष्टि होनी चाहिए, क्योंकि उसे स्वयं-कबूल किया गया गद्दार माना जाता है। भिवा दोलू पाटिल बनाम महाराष्ट्र राज्य, [एआईआर 1963 एससी 599] में इस न्यायालय ने माना कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 133 और 114 दृष्टांत (बी) का संयुक्त प्रभाव यह था कि एक सहअपराधी साक्ष्य देने में सक्षम है लेकिन यह असुरक्षित होगा। केवल उसकी गवाही के आधार पर अभियुक्त को दोषी ठहराना असुरक्षित होगा।

हालाँकि किसी सहअपराधी की गवाही पर किसी अभियुक्त की दोषसिद्धि को अवैध नहीं कहा जा सकता है, फिर भी अदालतें, अभ्यास के रूप में, भौतिक विवरणों की पुष्टि के बिना ऐसे गवाह की साक्ष्य को स्वीकार नहीं करेंगी। इस संबंध में भिवा दोलू पाटिल के मामले में न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की:

> "उपरोक्त निष्कर्ष पर पहुंचने में हम साक्ष्य अधिनियम की धारा 133 के प्रावधानों से अनभिज्ञ नहीं रहे हैं जिसमें लिखा है:
>
> धारा.133. "एक सहअपराधी एक आरोपी व्यक्ति के खिलाफ एक सक्षम गवाह होगा; और एक दोषसिद्धि केवल इसलिए अवैध नहीं है क्योंकि यह एक सहअपराधी की अपुष्ट गवाही पर आगे बढ़ती है।"

इसमें संदेह नहीं किया जा सकता है कि उस धारा के तहत केवल एक सहअपराधी की असंपुष्ट गवाही के आधार पर दोषसिद्धि अवैध नहीं हो सकती है, फिर भी अदालतें विवेक और अभ्यास के नियम की अनदेखी नहीं कर सकती हैं, जो कि आर. वी. बनाम बॉयज़, (1861) 9 कॉक्स सीसी 32 में मार्टिन बी के शब्दों में है। "इतना पवित्र हो गया है कि सम्मान का पात्र बन गया है और लॉर्ड एबिंगर के शब्दों में "यह कानून के सभी

सम्मान के योग्य है:।" मार्गदर्शन का यह नियम साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 के दृष्ठांत बी मे है जो इस प्रकार है:

> "अदालत यह अवधारणा कर सकती है कि एक साथी श्रेय के योग्य नहीं है जब तक कि भौतिक विवरण में उसकी संपुष्टि न हो जाए।"

22. 'संपुष्टि' शब्द का अर्थ केवल अन्य साक्ष्यों की पुष्टि करने वाला साक्ष्य नहीं है। डीपीपी बनाम हेस्टर (1972) 3 ऑल ईआर 1056 में, लॉर्ड मॉरिस ने कहा:

> "संपुष्टीकरण का उद्देश्य उन साक्ष्यों को वैधता या विश्वसनीयता प्रदान करना नहीं है जो अपर्याप्त या संदिग्ध या अविश्वसनीय हैं, बल्कि केवल उन साक्ष्यों की पुष्टि और समर्थन करना है जो साक्ष्य के रूप में पर्याप्त, संतोषजनक और विश्वसनीय हैं; और पुष्टिकारक साक्ष्य केवल तभी अपनी भूमिका निभाएंगे जब वे स्वयं पूर्णतया विश्वसनीय हो....."

23. डीपीपी बनाम किलबोर्न (1973) 1 ऑल ईआर 440 में, यह इस प्रकार देखा गया:

> "पुष्टि के विचार में कुछ भी तकनीकी नहीं है। जब जीवन के सामान्य मामलों में किसी को संदेह होता है कि किसी

विशेष कथन पर विश्वास किया जाए या नहीं, तो वह स्वाभाविक रूप से यह देखना चाहता है कि क्या यह उस विशेष मामले से संबंधित अन्य बयानों या परिस्थितियों के साथ फिट बैठता है; यह उतना ही बेहतर ढंग से फिट बैठता है जितना अधिक व्यक्ति इस पर विश्वास करने के लिए इच्छुक होता है। संदेहास्पद बयान की पुष्टि अधिक या कम हद तक अन्य बयानों या परिस्थितियों से होती है जिनमें यह फिट बैठता है।"

24. आरवी बास्करविले (सुप्रा) में, जो इस पहलू पर एक प्रमुख मामला है, लॉर्ड रीडिंग ने कहा:

"इसमें कोई संदेह नहीं है कि किसी सहअपराधी के अपुष्ट साक्ष्य कानून में स्वीकार्य हैं... लेकिन यह लंबे समय से आम कानून में अभ्यास का नियम रहा है कि न्यायाधीश जूरी को असंपुष्ट आधार पर किसी कैदी को दोषी ठहराने के खतरे के बारे में चेतावनी देता है। किसी सहअपराधी या सहयोगियों की गवाही, और यह न्यायाधीश के विवेक पर है कि उन्हें ऐसे सबूतों पर दोषी न ठहराने की सलाह दी जावे; लेकिन न्यायाधीश को जूरी को यह बताना चाहिए कि ऐसे अपुष्ट सबूतों पर दोषी ठहराना उनके कानूनी अधिकार के

भीतर है। अभ्यास का यह नियम वस्तुतः कानून के नियम के बराबर हो गया है, और आपराधिक अपील न्यायालय अधिनियम, 1907 के लागू होने के बाद से इस न्यायालय ने माना है कि, न्यायाधीश द्वारा ऐसी चेतावनी के अभाव में, दोषसिद्धि को रद्द किया जाना चाहिए..... यदि न्यायाधीश द्वारा उचित चेतावनी के बाद भी जूरी कैदी को दोषी ठहराती है, तो यह अदालत केवल इस आधार पर सजा को रद्द नहीं करेगी कि सहअपराधी की गवाही अपुष्ट थी।"

25. रामेश्वर बनाम राजस्थान राज्य एआईआर (1952) एससी 54 में, बोस, जे. ने एक साथी की असंपुष्ट गवाही की स्वीकार्यता के संबंध में बास्करविले मामले में निर्धारित नियम का उल्लेख करने के बाद, इस प्रकार कहा:

"मेरी राय में, जहां तक सहयोगियों का संबंध है, भारत में बिल्कुल यही कानून है और यौन अपराधों के मामले में यह निश्चित रूप से इससे अधिक नहीं है। इस देश के प्रयोजनों के लिए एकमात्र यह स्पष्टीकरण आवश्यक है कि अपराध का यह वर्ग कभी-कभी कहां होता है जूरी की सहायता के बिना एक न्यायाधीश द्वारा मुकदमा चलाया गया। इन मामलों में यह आवश्यक है कि न्यायाधीश को अपने फैसले में कुछ

संकेत देना चाहिए कि उसने सावधानी के इस नियम को ध्यान में रखा है और इसे अनावश्यक मानने के लिए पुष्टिकरण की आवश्यकता के कारण बताने के लिए आगे बढ़ना चाहिए। उसके सामने मौजूद विशेष मामले के तथ्यों पर और दिखाएं कि वह उस विशेष मामले में पुष्टि के बिना दोषी ठहराना सुरक्षित क्यों मानता है।" उसी फैसले में न्यायमूर्ति बोस ने आगे इस प्रकार कहा: "मैं आवश्यक पुष्टि की प्रकृति और सीमा की ओर मुड़ता हूं जब इसे छोड़ना सुरक्षित नहीं माना जाता है। यहां, फिर से, बास्करविले मामले में लॉर्ड रीडिंग द्वारा नियमों को स्पष्ट रूप से समझाया गया है पृष्ठ 664 से 669। यह असंभव होगा, वास्तव में यह खतरनाक होगा, ऐसे साक्ष्य तैयार करना जिन्हें पुष्टि माना जाना चाहिए या जिन्हें पुष्टि माना जाना चाहिए। इसकी प्रकृति और सीमा आवश्यक रूप से प्रत्येक मामले की परिस्थितियों के साथ-साथ अलग-अलग होनी चाहिए विशेष रूप से आरोपित अपराध। लेकिन इस सीमा तक नियम स्पष्ट हैं।"

26. सबसे पहले, यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक भौतिक परिस्थिति की स्वतंत्र पुष्टि इस अर्थ में हो कि मामले में सहअपराधी या

शिकायतकर्ता की गवाही के अलावा स्वतंत्र साक्ष्य, अपने आप में दोषसिद्धि को बनाए रखने के लिए पर्याप्त होना चाहिए। जैसा कि लॉर्ड रीडिंग्स कहते हैं-

> 'वास्तव में, यदि यह आवश्यक होता कि अपराध के हर विवरण में सहयोगी की पुष्टि की जानी चाहिए, तो उसका साक्ष्य मामले के लिए आवश्यक नहीं होगा, यह केवल अन्य और स्वतंत्र गवाहों की पुष्टि होगी।'

27. बस इतना ही आवश्यक है कि कुछ अतिरिक्त सबूत होने चाहिए जो यह संभव बनाते हों कि सहअपराधी (या शिकायतकर्ता) की कहानी सच है और उस पर कार्रवाई करना उचित रूप से सुरक्षित है।

28. दूसरे, स्वतंत्र साक्ष्य को न केवल यह विश्वास दिलाना सुरक्षित होना चाहिए कि अपराध किया गया था, बल्कि किसी तरह से आरोपी को इसके साथ जोड़ना या जोड़ना चाहिए, कुछ सामग्री विशेष रूप से सहअपराधी या शिकायतकर्ता की गवाही की पुष्टि करके कि आरोपी ने अपराध किया। इसका मतलब यह नहीं है कि पहचान की पुष्टि अपराध के साथ आरोपी की पहचान करने के लिए आवश्यक सभी परिस्थितियों तक होनी चाहिए। फिर, यह आवश्यक है कि स्वतंत्र साक्ष्य हों जो गवाह की कहानी पर विश्वास करना उचित रूप से सुरक्षित कर सकें कि अभियुक्त एक ही था, या उनमें से, जिन्होंने अपराध किया था। नियम के इस भाग का

कारण यह है कि "एक व्यक्ति जो स्वयं किसी अपराध का दोषी रहा है, वह हमेशा मामले के तथ्यों को बताने में सक्षम होगा, और यदि पुष्टि केवल उस इतिहास की सच्चाई पर होगी, बिना पहचाने व्यक्तियों, यह वास्तव में बिल्कुल भी पुष्टि नहीं है..... इससे यह बिल्कुल भी प्रदर्शित नहीं होगा कि आरोपी पक्ष ने इसमें भाग लिया था।

29. तीसरा, पुष्टि स्वतंत्र स्रोतों से होनी चाहिए और इस प्रकार आमतौर पर एक सहअपराधी की गवाही दूसरे की पुष्टि के लिए पर्याप्त नहीं होगी। लेकिन निःसंदेह परिस्थितियाँ ऐसी हो सकती हैं कि संपुष्टि की आवश्यकता से दूर रहना सुरक्षित हो जाए और उन विशेष परिस्थितियों में इस प्रकार आधारित दोषसिद्धि अवैध नहीं होगी। मैं ऐसा इसलिए कह रहा हूं क्योंकि यह तर्क दिया गया था कि इस मामले में मां एक स्वतंत्र स्रोत नहीं थी।

30. चौथा, पुष्टि के लिए प्रत्यक्ष साक्ष्य की आवश्यकता नहीं है कि अभियुक्त ने अपराध किया है। यदि यह अपराध के साथ उसके संबंध का परिस्थितिजन्य साक्ष्य मात्र है तो यह पर्याप्त है। क्या यह अन्यथा होता, "कई अपराध जो आम तौर पर गुपचुप तरीके से साथियों के बीच किए जाते हैं, जैसे अनाचार, महिलाओं के साथ अपराध' (या अप्राकृतिक अपराध) 'कभी भी न्याय के कटघरे में नहीं लाए जा सकते"। [देखें: एमओ शम्सुद्दीन बनाम केरल राज्य (1995 (3) एससीसी 351)]

31. उपरोक्त स्थिति को के. हाशिम बनाम तमिलनाडु राज्य [2005 1 एससीसी 237] में उजागर किया गया था।

32. आरोपी ललित सांगा ने अपने साक्ष्य में उन घटनाओं का क्रम दिया है जिसके कारण गायत्री देवी की हत्या हुई और उसने यह भी बताया कि कैसे एक साजिश रची गई और कैसे अन्य आरोपी व्यक्तियों की मदद से साजिश को अंजाम दिया गया और कैसे आरोपी लालू राम की शह और सक्रिय भागीदारी पर लक्ष्मी पासवान ने गायत्री देवी को चाकू मारा था। आरोपी-अपीलकर्ता की ओर से कहा गया है कि इस गवाह ने उस लड़के का नाम नहीं बताया, जो उसे बुलाने आया था और न ही उसने ऑटो रिक्शा का नंबर और वह जगह बताई, जहां उसके अन्य साथी खड़े थे। हालाँकि ये सभी बिंदु सारभूत नहीं हैं, लेकिन पीडब्लू-6 के साक्ष्य तब पुष्ट होते हैं जब डॉक्टर को गायत्री देवी के शरीर पर चोट के निशान मिले और इसके अलावा गाल और गर्दन पर भी खरोंच के निशान पाए गए जब आरोपी-अपीलकर्ता ने गायत्री देवी का मुंह दबाया था जिससे कि वह शोर नहीं मचा सके और आगे पैसे जो लूट लिए गए थे और लूटे गए पैसे का कुछ हिस्सा उसके संस्वीकृति बयान के आधार पर लक्ष्मी पासवान के कब्जे से बरामद किया गया था। हालाँकि यह तथ्य पीडब्लू-6 की गिरफ्तारी से पहले का है, लेकिन पीडब्लू-6 के साक्ष्य से ये सभी तथ्य पीडब्लू-6 के साक्ष्य की पुष्टि करते हैं क्योंकि वह इन सभी तथ्यों को नहीं जानता था और उसके साक्ष्य

से ये सभी तथ्य पुष्ट हो जाते हैं और, इसलिए, PW-6 के साक्ष्यों की पूर्ण पुष्टि होती है और PW-6 के साक्ष्य पर अविश्वास करने का कोई आधार नहीं है और इसलिए PW-6 के साक्ष्य के आधार पर आरोपी-अपीलकर्ता और सह-अभियुक्त लालू राम को दोषी पाया गया। और वे आईपीसी की धारा 396 के तहत अपहरण के साथ-साथ घटना में भी शामिल थे।

33. अब हम क्षमादान से संबंधित प्रश्न पर विचार करेंगे।

34. जहां तक सीजेएम के आदेश के क्षमादान वाले हिस्से का सवाल है, उसे रद्द नहीं किया गया है और दूसरे हिस्से से संबंधित कार्यवाही को रद्द कर दिया गया है, जिसके तहत ललित सांगा से पूछताछ की गई थी, लेकिन उनसे जिरह नहीं की गई और न ही उसका अभियुक्त की उपस्थिति में दर्ज किया गया था और इसलिए निचली अदालत ने मामले की रिमांड के बाद आदेश के इस भाग को पूरा किया और ललित सांगा से अभियुक्त की उपस्थिति में पूछताछ की गई और उससे जिरह भी की गई और उसके बाद मामला सत्र न्यायालय को सौंप दिया गया, और इसलिए, सीआरपीसी की धारा 306 का पूर्ण अनुपालन किया गया था। अनुमोदक की जांच करने का चरण केवल उसे क्षमा प्रदान किए जाने के बाद आता है और क्षमा के बाद आरोपी की उपस्थिति में एक गवाह के रूप में उसकी जांच की गई और उससे जिरह भी की गई। इसलिए मामले की रिमांड के बाद विद्वान सीजेएम द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया व आदेश में कोई अवैधता नहीं है।

35. तथ्यात्मक स्थिति और ऊपर दिए गए कानूनी सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए अपरिहार्य निष्कर्ष यह है कि अपीलें योग्यता के बिना हैं और खारिज किए जाने योग्य हैं जैसा कि हम निर्देशित करते हैं।

के.के.टी.

अपील खारिज की जाती है।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी सुश्री अनिता चौधरी द्वितीय (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरणः यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और अधिकारिक उददेश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।